अध्याय – 22

पारिस्थितिकीय तंत्र की संकल्पना
(Concept of Ecosystem)

पारिस्थितिकी शब्द भले ही उन्नीसवीं शताब्दी की देन हो, किन्तु पारिस्थितिकी की संकल्पना हमारी संस्कृति की दृष्टि से अति प्राचीन है। पुरातन काल से ही भारतीय ऋषियों एवम् मनीषियों ने प्रकृति एवम् जीव के अन्तर्सम्बन्धों को जनमानस का अंग बनाने के लिये इन्हें विभिन्न प्रतीकों के रूप में धर्म, सामाजिक नियम और आचरण से जोड़ दिया था। जैसे गाय को माता का स्थान प्रदान किया गया। फलस्वरूप हजारों वर्षों से ये अन्तर्सम्बंध मित्रवत् चले आ रहे थे, किन्तु आधुनिक युग में मानव की प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की आकांक्षा ने सनातन नियमों और आचरण को त्याग कर केवल भौतिक सुख को जीवन का आधार मान लिया। फलस्वरूप प्रकृति और जीव के अन्तर्सम्बन्धो में विकृति पैदा हो गई और पारिस्थितिकी की संकल्पना का उदय हुआ।

पारिस्थितिकी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम हैकल (1869) द्वारा वनस्पति के क्षेत्रों के लिये किया गया। हैकल द्वारा पारिस्थितिकी अर्थात् इकोलॉजी (Ecology) शब्द की रचना ग्रीक भाषा के Oikos अर्थात् आवास तथा Logos अर्थात् अध्ययन को मिलाकर की गई। हैकल से पूर्व भी अनेक विद्वानों ने अप्रत्यक्ष रूप से पारिस्थितिकी के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत किये। हम्बोल्ट (1769) ने बताया कि पृथ्वी जड़ पदार्थ नहीं है। इसी प्रकार कार्ल रिटर (1779–1859) ने लिखा कि पृथ्वी धरातल पर विभिन्न तत्त्वों के स्थानिक वितरण में सामंजस्य होता है। ये तत्त्व आपस में इतने अन्तर्सम्बन्धित होते हैं, कि उस क्षेत्र को एक विशिष्टता प्रदान कर देते हैं। रिटर ने आगे बताया कि पृथ्वी उत्पत्ति के नियम मानव नहीं बनाता बल्कि पृथ्वी के अपने नियम होते हैं, जिनका अध्ययन मानव कल्याण के लिए महत्त्वपूर्ण है।

यद्यपि हैकल ने पारिस्थितिकी अध्ययन का प्रारम्भ किया, किन्तु वास्तव में सन् 1935 में ए.जी. टेन्सले द्वारा किये गये जीवमण्डल के अध्ययन में ''पारिस्थितिकी तंत्र'' शब्द का प्रयोग किये जाने पर ही विश्व का ध्यान इस ओर गया। तांसले के अनुसार ''वह तंत्र जिसमें पर्यावरण के जैविक और अजैविक कारक अन्तः सम्बन्धित होते हैं, पारिस्थितिकी तंत्र कहलाता है।'' (The System resulting from the integration of all the living and non-living factors of the environment.)

आर. डजोज (R. Dajoz) ने पारिस्थितिकी को इस प्रकार परिभाषित किया है – ''पारिस्थितिकी एक ऐसा विज्ञान है, जिसका सम्बन्ध जीवों के जीवन की दशाओं और जिस पर्यावरण में यह निवास करते हैं, उस पर्यावरण तथा उन जीवों के बीच के अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन करना है।'' (Ecology is the science concerned with the study of the condition of existence of living organism and the inter-relation between the organism and the environment in which they live.)

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पारिस्थितिकी तंत्र एक ऐसी व्यवस्था है, जो जीव और पर्यावरण की अन्तःप्रक्रिया का परिणाम होती है। यह व्यवस्था प्राकृतिक नियमों के तहत विकसित होती है। अतः पारिस्थितिकी के अध्ययन में इसी व्यवस्था के रहस्यों का पता लगाया जाता है। यह व्यवस्था इतनी जटिल है कि जैसे–जैसे विद्वान इन रहस्यों की खोज कर रहे हैं, वैसे–वैसे नये रहस्य उद्घटित होते जा रहे हैं। यद्यपि वैज्ञानिक उपलब्धियों और तकनीकी विकास के मद में चूर मानव यह मानने लगा है कि वह प्रकृति का दास नहीं है। वह अपनी इच्छानुसार प्रकृति का उपयोग और उपभोग करने के लिये स्वतंत्र है। मानव की इसी प्रवृत्ति का दुष्परिणाम अब पर्यावरण ह्रास के विभिन्न रूपों में सामने आने लगा है।

पारिस्थितिक तंत्र की अवधारणा
(Concept of Ecosystem)

एक भौगोलिक इकाई में निवास करने वाले जीवों और उस इकाई के पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्धों का समयबद्ध और क्रमबद्ध अध्ययन पारिस्थितिक तंत्र कहलाता है। ए.जी. तांसले (1935) के अनुसार ''वह तंत्र जिसमें पर्यावरण के समस्त जैविक और अजैविक कारक अन्तःसम्बन्धित होते हैं, पारिस्थितिक तंत्र कहलाता है।

पारिस्थितिक तंत्र से सम्बन्धित अन्य विद्वानों द्वारा इसकी परिभाषा निम्न प्रकार प्रस्तुत की गई है–

आर.एल. लिंडमैन (1942) के अनुसार ''वह तंत्र जो किसी भी परिमाण वाले एक विशिष्ट समय इकाई में भौतिक – रासायनिक – जैविक प्रक्रियाओं द्वारा निर्मित हो, पारिस्थितिक तंत्र कहलाता है।

फासबर्ट (F.R. Fosbert, 1963) के अनुसार, ''पारिस्थितिक तंत्र एक कार्यशील एवम् परस्पर क्रियाशील तंत्र होता है, जिसका संगठन एक या अधिक जीवों तथा उनके प्रभावी पर्यावरण से होता है।''

ओडम (E.P. Odum, 1971) के अनुसार, ''पारिस्थितिक तंत्र ऐसे जीवों तथा उनके पर्यावरण की आधारभूत कार्यात्मक इकाई है, जो दूसरे पारिस्थितिक तंत्रों से तथा अपने अवयवों के मध्य निरन्तर अन्तःक्रिया करते रहते हैं।''

पीटर हेगेट (P. Haggett, 1975) के अनुसार, ''पारिस्थितिक तंत्र ऐसी पारिस्थितिक व्यवस्था है, जिसमें पादप तथा जीवजन्तु अपने पर्यावरण से पोषण श्रृंखला द्वारा जुड़े रहते हैं।

स्ट्राहलर (A.N. Strahler & A.H. Strahler, 1976) के अनुसार, ''पारिस्थितिक तंत्र ऐसे घटकों का समूह है, जो जीवों के समूह के साथ परस्पर क्रियाशील रहता है। इस क्रियाशीलता में पदार्थों तथा ऊर्जा का निवेश होता है, जो जैविक संरचना का निर्माण करते हैं।''

पार्क (C.C. Park, 1980) के अनुसार, ''पारिस्थितिक तंत्र एक निश्चित क्षेत्र के अन्तर्गत समस्त प्राकृतिक जीवों तथा तत्वों का सकल योग होता है।''

एक पारिस्थितिक तंत्र पारिस्थितिक अध्ययन की आधारभूत इकाई होता है, जिसका आकार और विस्तार अलग–अलग हो सकता है। उदाहरणार्थ एक पारिस्थितिक तंत्र सम्पूर्ण भूमण्डल पर व्याप्त पारिस्थितिक तंत्र (Global Ecosystem) हो सकता है, तो दूसरा पारिस्थितिक तंत्र एक चिड़ियाघर में निर्मित पिंजरे के समान छोटा हो सकता है अथवा किसी झील तक भी सीमित हो सकता है। पारिस्थितिक तंत्र प्राकृतिक भी हो सकता है अथवा मानव निर्मित भी हो सकता है।

पारिस्थितिक तंत्र के प्रकार
(Types of Ecosystem)

(अ) ऊर्जा के स्त्रोत के आधार पर –

पारिस्थितिक तंत्र दो प्रकार के होते हैं –

(i) प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र (Natural Ecosystem):– प्राकृतिक अवस्थाओं के विकसित पारिस्थितिक तंत्र को प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र कहा जाता है, ये तंत्र दोनों प्रकार के हो सकते हैं– स्थलीय और जलीय। स्थलीय प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों में जंगल, घास के मैदान, तालाब, नदी, रेगिस्तान, पर्वतीय क्षेत्र आदि सम्मिलित किये जाते हैं। सामुद्रिक पारिस्थितिक तंत्र सबसे बड़ा और स्थायी पारिस्थितिक तंत्र होता है। वन, घास के मैदान, रेगिस्तान, खुले सागर आदि प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र है।

(ii) मानव निर्मित या कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र – (Man-made or artificial Ecosystem):– मानव निर्मित एवम् अनुरक्षित तंत्र को कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र कहा जाता है। जैसे खेत, पार्क, रसोई–उद्यान, चिड़ियाघर, एक्वेरियम आदि।

(ब) आवास के आधार पर – (i) स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र (i) जलीय पारिस्थितिक तंत्र।

(स) उपयोग के आधार पर – (ii) कृषि पारिस्थितिक तंत्र (ii) अकृषित पारिस्थितिक तंत्र।

(द) विकास के आधार पर – (i) प्रौढ़ पारिस्थितिक तंत्र (ii) अपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र (iii) मिश्रित पारिस्थितिक तंत्र (iv) निष्क्रिय पारिस्थितिक तंत्र।

पारिस्थितिक तंत्र की संरचना
(Structure of Ecosystem)

एक पारिस्थितिक तंत्र की संरचना पर्यावरण के जैविक और अजैविक घटकों की पारस्परिक अन्तःक्रियाओं द्वारा होती है।

जैविक घटक (Biotic Components)

किसी पारिस्थितिक तंत्र के समस्त जीवित जीव उस तंत्र के जैविक घटक कहलाते हैं, ये सभी जीव विभिन्न पारस्परिक अन्तःक्रियाओं द्वारा एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। ये जीव एक दूसरे से कार्यात्मक रूप से भी जुड़े रहते हैं। अतः किसी भी पारिस्थितिक तंत्र से एक प्रकार के जीवों को अलग कर देने पर उस तंत्र के शेष जीवों के अस्तित्व को खतरा पैदा हो सकता है, जिससे पारिस्थितिक तंत्र का सन्तुलन ही बिगड़ सकता है।

जैविक घटकों को उनकी पोषण क्षमता एवम् कार्यशीलता के आधार पर निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. पोषण क्षमता के आधार पर जैविक घटकों का वर्गीकरण :–

पोषण क्षमता के आधार पर जैविक घटकों को दो भागों में बाँटा गया है –

(i) स्वपोषी घटक (Autotrophs Components):– स्वपोषी घटक, जिन्हें प्राथमिक उत्पादक (Primary Producers) भी कहा जाता है, सौर ऊर्जा से प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा और मृदा से जड़ों द्वारा स्वयं अपना भोजन बनाते हैं तथा अन्य शाकाहारी जीवों के लिये भोज्य पदार्थ प्रदान करते हैं। प्रकाश संश्लेषण में समर्थ हरे पौधे, नील हरित शैवाल (Blue green algae), प्रकाश संश्लेषी जीवाणु (Photosynthetic bacteria) आदि पारिस्थितिक तंत्र के स्वपोषी घटक हैं।

(ii) परपोषी घटक (Hterotrophs Components):– ये वे परपोषी सजीव घटक हैं, जो स्वपोषित प्राथमिक उत्पादकों द्वारा प्रदत्त भोजन ग्रहण करते हैं। परपोषी घटकों द्वारा स्वपोषियों द्वारा निर्मित भोजन का उपयोग किये जाने के कारण इन्हें उपभोक्ता (Consumers) भी कहा जाता है। आहार ग्रहण करने की प्रक्रिया के आधार पर इन्हें तीन भागों में बाँटा जा सकता है –

(अ) मृत जीवी (Saprophyte) :– मृत जीवी घटक मृत पौधों और जन्तुओं से प्राप्त कार्बनिक यौगिकों को घोल के रूप में ग्रहण करके जीवित रहते हैं।

(ब) परजीवी (Parasite) :– ये घटक अपने भोजन और जीवन निर्वाह के लिये दूसरे जीवित जीवों पर आश्रित रहते हैं।

(स) प्राणी समभोजी (Holozonic) :– ये घटक अपने मुख द्वारा आहार ग्रहण करते हैं। मानव सहित सभी बड़े जन्तु इस वर्ग में आते हैं।

2. कार्यशीलता के आधार पर जैविक घटकों को तीन भागों में बाँटा जाता है –

(**i**) उत्पादक (Producers) :– इनमें सौर ऊर्जा से प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा और मृदा से जड़ों द्वारा स्वयं अपना भोजन बनाने वाले पादप आते हैं, जिन्हें प्राथमिक उत्पादक कहा जाता है।

(**ii**) उपभोक्ता (Consumers) – ये परपोषी जीव होते हैं, जो स्वपोषी पादपों द्वारा निर्मित भोजन ग्रहण करते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं :–

(अ) शाकाहारी या प्राथमिक उपभोक्ता (Herbivores or Primary Consumer) :– पौधों की पत्तियों अथवा उनके उत्पादों से भोजन प्राप्त करने वाले समस्त जीव–जन्तु जैसे खरगोश, हिरण, बकरी, गाय आदि, कीड़े तथा जलीय जीवों में विभिन्न प्रकार के मौलस्क जीव आते हैं।

(ब) मांसाहारी या द्वितीयक उपभोक्ता (Carnivores or Secondary Comsumers) :– ये शाकाहारी जन्तुओं को मारकर अपना भोजन प्राप्त करते हैं। इन्हें द्वितीयक उपभोक्ता भी कहा जाता है। जैसे मेंढ़क, बिल्ली, लोमड़ी, कुत्ता, शेर आदि।

(स) सर्वाहारी या तृतीयक उपभोक्ता (Omnivores or Tertiary Consumers) :– इस श्रेणी में वे जीव आते हैं, जो पादपों, शाकाहारी व मांसाहारी जीवों को खाकर अपना भोजन प्राप्त करते हैं। इनमें मानव, बाज, गिद्ध, मछलियाँ, शेर आदि सम्मिलित हैं। इसलिये इन्हें तृतीयक उपभोक्ता या उच्च श्रेणी उपभोक्ता (Top Consumers) कहा गया है।

(iii) अपघटक (Decomposers) :–

इनमें मुख्यतः सूक्ष्म जीवाणु तथा कवक सम्मिलित हैं, जो मृत पादपों और जन्तुओं सहित जैविक पदार्थों को सड़ा गलाकर उनका अपघटन कर देते हैं। ये जीव अपघटन की प्रक्रिया में अपना आहार ग्रहण करते हुए जैविक तत्वों को पुनर्व्यवस्थित करते हैं और प्राथमिक उत्पादकों के प्रयोग हेतु पुनः सुलभ करवाते हैं।

उपर्युक्त सभी घटक सम्मिलित रूप से पारिस्थितिक तंत्र के सन्तुलन में सहायक होते हैं।

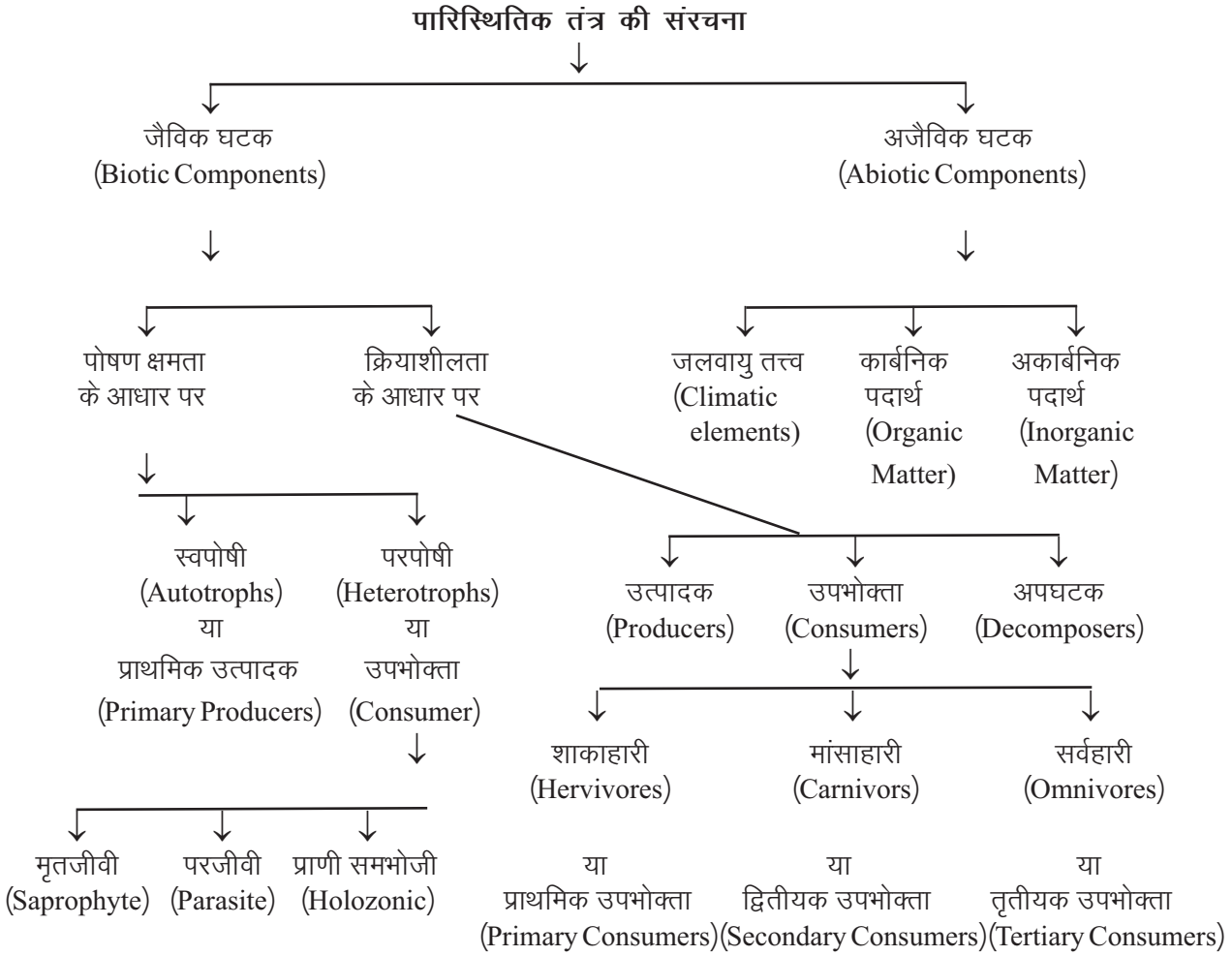

अजैविक घटक (Abiotic Components)

अजैविक घटक तीन प्रकार के होते हैं :–

(**i**) जलवायु तत्त्व :– जैसे सूर्य का प्रकाश, तापमान, वर्षा, आर्द्रता, जलवाष्प आदि।

(**ii**) कार्बनिक पदार्थ :– जैसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, तरल पदार्थ आदि। इन्हें शरीर निर्माणक पदार्थ कहा जाता है।

(**iii**) अकार्बनिक पदार्थ :– जैसे ऑक्सीजन, कार्बन डाई–ऑक्साइड, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, जल, कार्बन, सल्फर, कैल्शियम, खनिज लवण आदि। ये तत्त्व पारिस्थितिक तंत्र में पदार्थों के चक्रण में विशेष भूमिका अदा करते हैं और जीवों को शक्ति प्रदान करते हैं।

खाद्य श्रृंखला (Food Chain)

पारिस्थितिकी तंत्र में सभी जीव जो उत्पादक एवं उपभोक्ता की श्रेणी में आते है एक क्रम या श्रृंखला में व्यवस्थित रहते हैं, जीवों की इस व्यवस्थित श्रृंखला को जिसके द्वारा खाद्य ऊर्जा एवं पोषक पदार्थों का स्थानान्तरण होता है, खाद्य श्रृंखला कहते है।

पोष स्तर (Tropic Level)

खाद्य श्रृंखला के प्रत्येक स्तर या कड़ी को पोष स्तर कहते है–

घास	→	टिड्डा	→	छिपकली	→	बाज
↑		↑		↑		↑
पोष स्तर प्रथम		पोष स्तर द्वितीय		पोष स्तर तृतीय		पोष स्तर चतुर्थ

खाद्य जाल (Food Web)

प्रत्येक पारिस्थितिकी तंत्र में एक साथ कई खाद्य श्रृंखलाएँ क्रियाशील रहती है। शाकाहारी व मांसाहारी जीवों को भोजन के कई विकल्प उपलब्ध होते है, जिससे खाद्य श्रृंखलाएँ आपस में अन्तर्ग्रथित होकर खाद्य जाल का निर्माण करती हैं। खाद्य जाल जितना जटिल होगा, पारिस्थितिकी तंत्र उतना ही स्थायी होगा एवं लम्बे समय तक बना रहेगा।

पारिस्थितिकी पिरामिड (Ecopyramids)

उत्पादकों, शाकाहारियों, मांसाहारियों को क्रमशः उनकी संख्या, जैवभार व ऊर्जा प्रवाह की मात्रा को आयतों द्वारा निरुपित करने पर निर्मित पिरामिड रुपी संरचना पारिस्थितिकी पिरामिड कहलाते हैं।

पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow in Ecosystem)

एक पारिस्थितिक तंत्र के जैविक और अजैविक घटक उस तंत्र की पर्यावरणीय पारिस्थितिक से नियंत्रित होकर एक निश्चित प्रक्रिया में क्रियाशील रहते हैं। क्रियाशील रहने के लिये ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यही ऊर्जा एक पारिस्थितिक तंत्र को गतिशील बनाये रखती है। इस समस्त प्रक्रिया को ही ऊर्जा प्रवाह कहा जाता है। इस ऊर्जा प्रवाह को प्रकृति प्राकृतिक रूप से नियंत्रित रखती है, जिसके फलस्वरूप उस पारिस्थितिक तंत्र में सन्तुलन बना रहता है। इस प्रक्रिया में मानवीय अथवा प्राकृतिक कारणों से थोड़ा भी परिवर्तन होने पर उस पारिस्थितिक तंत्र में संकट उत्पन्न हो सकता है।

किसी भी पारिस्थितिक तंत्र को सुचारु रूप से गतिशील बनाये रखने के लिये निरन्तर ऊर्जा प्रवाह की आवश्यकता होती है। पृथ्वी पर ऊर्जा का प्रमुख स्त्रोत सूर्य है, किन्तु वास्तव में सौर ऊर्जा का बहुत सूक्ष्म भाग ही पारिस्थितिक तंत्रों में उपयोग में आ पाता है। जैसे सौर ऊर्जा का मात्र 0.02 प्रतिशत भाग पौधों द्वारा रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित किया जाता है और कुछ भाग पारिस्थितिक तंत्र के अन्य कार्यों में उपयोग हो पाता है। सौर ऊर्जा का यही सूक्ष्म भाग एक पारिस्थितिक तंत्र को गतिशील बनाये रखने में सक्षम होता है।

पौधों में पाये जाने वाला हरित लवक (क्लोरोफिल) सौर ऊर्जा को अवशोषित करके उसे कार्बनिक जैव कणों (Organic Molecules) में बदल देता है। इस प्रक्रिया को प्रकाश संश्लेषण कहा जाता हैं। पौधे कार्बनडाई ऑक्साइड एवम् जल की सहायता से सौर ऊर्जा को प्रकाश संश्लेषण विधि द्वारा भोज्य पदार्थ में बदलने का कार्य निम्न रासायनिक सूत्र के द्वारा करते हैं:–

$$(6\,CO_2 + 6H_2O \xrightarrow[\text{क्लोरोफिल}]{\text{सौर ऊर्जा (उष्मा)}} C_6H_{12}O_6 + 6\,O_2)$$

इस प्रकार प्रकाश संश्लेषण के लिये सौर ऊर्जा, कार्बन डाइ–ऑक्साइड और जल पौधों की पत्तियों में उपस्थित क्लोरोफिल द्वारा अवशोषित कर लिये जाते हैं तथा आणविक क्रिया द्वारा जैव तत्त्वों ऑक्सीजन, ग्लूकोज और कार्बोहाइड्रेट्स में बदल दिये जाते हैं। ग्लूकोज और कार्बोहाइड्रेट्स से पौधे का विकास होता है और ऑक्सीजन तथा जलवाष्प पौधों की श्वसन क्रिया द्वारा वायुमण्डल में छोड़ दी जाती है।

पौधों में संचित रासायनिक ऊर्जा को शाकाहारी जीव भोजन के रूप में प्राप्त करते हैं। पौधों से शाकाहारी जीवों में स्थानान्तरण के समय ऊर्जा का ह्यास होता है। इसके बाद मांसाहारी जीव शाकाहारी जीवों को खाते हैं, उस समय भी ऊर्जा का ह्यास होता है। इस प्रकार एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर में ऊर्जा प्रवाहित होती रहती है, साथ ही ऊर्जा के इस स्थानान्तरण में उसका ह्यास भी होता रहता है। इस प्रकार प्रत्येक उपपोषण स्तर पर ऊर्जा की मात्रा निरन्तर रूप से कम होती जाती है।

ओडम के अनुसार सूर्यातप से औसतन प्रतिदिन प्रति वर्गमीटर 3000 किलो कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। इसमें से 1500 किलो कैलोरी ऊर्जा पौधों द्वारा अवशोषित की जाती है, जिसका केवल 1 प्रतिशत (15 किलो कैलोरी) रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित होती है। द्वितीय एवम् तृतीय पोषण स्तर पर यह

घटकर क्रमशः 1.5 किलो कैलोरी और 0.3 किलो कैलोरी (औसत 10 प्रतिशत) रह जाती है। सामान्यतः एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर में स्थानान्तरण के समय अधिकांश ऊर्जा का ह्रास होता रहता है, किन्तु उसकी गुणवत्ता बढ़ती जाती है। यहाँ यह जान लेना भी आवश्यक है कि प्रकृति में सर्वत्र ऊर्जा संरक्षण का नियम लागू होता है, जिसके अनुसार ऊर्जा का न तो सृजन होता है न ही विनाश, यद्यपि ऊर्जा का रूप परिवर्तित हो सकता है। इस प्रकार किसी पारिस्थितिकी तंत्र में अन्तःगमित व बर्हिगमित ऊर्जा की मात्रा समान रहती है।

मानवीय प्रभाव (Human Influence)

पारिस्थितिक तंत्र किसी एक भौगोलिक इकाई में निवास करने वाले जीव और वहाँ के पर्यावरण के बीच अन्तःप्रक्रिया का प्रतिफल हैं। इन जीवों में मानव ही ऐसा जीव है जो अपनी विभिन्न क्रियाओं द्वारा पर्यावरण से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिये अन्य जीवों की तुलना में पर्यावरण को अधिक प्रभावित करता है। वास्तव में मानव सभ्यता के विकास का आधार ही प्रकृति का शोषण रहा है। प्रकृति कुछ पदार्थों को स्वतः पुनःपूर्ण कर लेती है, किन्तु अनेक तत्त्व ऐसे होते हैं, जिन्हें पुनःपूर्ण नहीं किया जा सकता। फलस्वरूप पारिस्थितिक तंत्र में असन्तुलन पैदा हो जाता है, जो मानव और पर्यावरण दोनों के लिये हानिकारक होता है। पारिस्थितिक तंत्र पर मानव के प्रभाव अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार के देखे जा सकते हैं। मानव के अनुकूल प्रभावों द्वारा मानव और पर्यावरण दोनों को लाभ होता है, किन्तु प्रतिकूल प्रभावों द्वारा एक को किसी न किसी प्रकार की हानि होती है।

पारिस्थितिक तंत्र पर मानव के अनुकूल प्रभाव (Positive Impact of Man on Ecosystem)

मानव ने प्रारम्भ से ही अपनी बुद्धि, ज्ञान और तकनीकी विकास के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग और उनको नियंत्रित करने का प्रयास किया है। मानव ने अपने ज्ञान द्वारा अपनी समस्याओं के समाधान हेतु भूमि उपयोग, कृषि के विकास, वानिकी, वन्यजीव प्रबन्ध आदि में सफलता अर्जित की है। उदाहरणार्थ विश्व की तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के कारण भूमि की कमी, खाद्यान्नों की कमी, विभिन्न बीमारियाँ आदि की समस्याएँ उत्पन्न हुई तो मानव ने भूमि के बेहतर उपयोग, खाद्यान्नों के अधिकतम उत्पादन के लिये रासायनिक उर्वरक, उन्नत किस्म के बीज, कृषि उपकरणो का विकास तथा अनेक उन्नत औषधियों का आविष्कार करके विभिन्न बीमारियों को रोकने के प्रयास द्वारा इन समस्याओं के समाधान का प्रयत्न किया और उसमें सफलता प्राप्त की है।

पारिस्थितिक तंत्र पर मानव के प्रतिकूल प्रभाव (Negative Impact of Man on Ecosystem)

पारिस्थितिक तंत्र पर मानव के अनुकूल प्रभावों की तुलना में प्रतिकूल प्रभाव कहीं अधिक और महत्त्वपूर्ण हैं, जिनके कारण वर्तमान समय में पर्यावरणीय समस्याएँ विकराल रूप धारण कर चुकी हैं। यदि समय रहते इन समस्याओं पर नियंत्रण नहीं किया गया, तो एक दिन पृथ्वी से मानव जीवन ही समाप्त हो सकता है। पारिस्थितिक तंत्र पर मानव के प्रतिकूल प्रभावों को निम्न शीर्षकों में स्पष्ट किया जा सकता है –

1. कृषि क्रियाओं के प्रतिकूल प्रभाव
2. वनोन्मूलन के प्रतिकूल प्रभाव
3. खनन क्रियाओं के प्रतिकूल प्रभाव
4. औद्योगीकरण के प्रतिकूल प्रभाव
5. जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव
6. प्राकृतिक आपदाओं के प्रतिकूल प्रभाव

(1) कृषि क्रियाओं के प्रतिकूल प्रभाव (Adverse Impact of Agricultural Activities) :– जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण उत्पन्न समस्याओं के समाधान हेतु मानव ने जहाँ कृषि भूमि के विस्तार, रासायनिक उर्वरक, उन्नत किस्म के बीज, कृषि यंत्रों एवम् उपकरणों का विकास किया, वहीं इनके परिणामस्वरूप पारिस्थितिक तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव भी उत्पन्न हुए हैं।

मानव ने कृषि भूमि के विस्तार के लिए न केवल वनों और घास के मैदानों को साफ किया है, बल्कि समुद्र से भी भूमि निकालने का प्रयास किया है, जिसका सीधा एवम् प्रतिकूल प्रभाव वन्य जीवों, चारागाहों तथा सामुद्रिक पारिस्थितिक तंत्र पर पड़ा है। इसी प्रकार खाद्यान्नों के अधिक उत्पादन के लिये रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशक दवाओं का प्रयोग करके न केवल भूमि को कृषि के अनुपयुक्त बनाने का कार्य किया है, बल्कि रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशक दवाओं के निरन्तर भूमिगत जल में मिलकर उसे प्रदूषित करते हैं। फसलों के अधिक उत्पादन के लिए सिंचाई हेतु भूमिगत जल के निरन्तर प्रयोग से भूमिगत जल के स्तर में गिरावट आई है, जिससे राजस्थान जैसे कम वर्षा वाले प्रदेशों में पेय जल संकट उत्पन्न हो गया है।

(2) वनोन्मूलन के प्रतिकूल प्रभाव (Adverse Impact of Deforestation) :– मानव द्वारा कृषि क्षेत्र के विस्तार एवम् अन्य आर्थिक क्रियाओं हेतु वनों की अनियंत्रित कटाई किए जाने का प्रतिकूल प्रभाव पारिस्थितिक तंत्र की जलवायु, मिट्टी, वन्य जीवों, पक्षियों आदि पर स्पष्ट देखा जा सकता है। वनोन्मूलन के फलस्वरूप जलवायु गर्म होने लगती है, वर्षा की मात्रा में कमी आ जाती है, भूमि का कटाव होने लगता है और वन्यजीवों का विनाश होने लगता है। वनों की अनियंत्रित कटाई के फलस्वरूप ही आज विश्व के अनेक भागों में, जिसमें भारत भी सम्मिलित है, अनेक वन्यजीव प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं या विलुप्त होने के कगार पर है। इससे वानिकी पारिस्थितिक तंत्र असन्तुलित हो गया है, क्योंकि प्राकृतिक वनस्पति ही वानिकी पारिस्थितिक तंत्र का प्रमुख आधार है।

वन रिपोर्ट 2015 के अनुसार देश में कुल वन क्षेत्र लगभग 7,01,673 वर्ग किलोमीटर है, जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 22.02 प्रतिशत है। इसमें से सघन वनक्षेत्र 4,80,214 वर्ग किलोमीटर (13.92 प्रतिशत) तथा खुला वन क्षेत्र

2,21,459 वर्ग किलोमीटर (8.10 प्रतिशत) है। इसमें पेड़ों से ढका क्षेत्र 92,572 वर्ग कि.मी. है, जो कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 2.82 प्रतिशत है। भारत उन कतिपय देशों में से है, जहाँ 1894 से ही वननीति लागू है। इसे 1952 और 1988 में संशोधित किया गया है। संशोधित वननीति, 1988 का मुख्य आधार वनों की सुरक्षा, संरक्षण और विकास है। आगामी 20 वर्षों के लिये लम्बी अवधि की एक वृहत् रणनीति योजना के रूप में राष्ट्रीय वन्य कार्यक्रम भी तैयार किया गया है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य वनों की कटाई को रोकना तथा देश के एक तिहाई भाग को वृक्षों/वनों से ढकना है।

(3) खनन क्रियाओं के प्रतिकूल प्रभाव (Adverse Impact of Mining Activities) :– औद्योगिक और तकनीकी प्रगति के साथ खनन प्रक्रिया में भी वृद्धि हुई, किन्तु इससे अनेक पर्यावरणीय संकट उत्पन्न हो गए। खनन प्रक्रिया के अन्तर्गत विस्तृत क्षेत्र में भूमि को खोदा जाता है, जिसके कारण भू सतह पर विस्तृत गढ्ढों का निर्माण हो जाता है और उस क्षेत्र की प्राकृतिक वनस्पति तथा जीव जन्तुओं का विनाश हो जाता है। लाखों वर्ग किलोमीटर क्षेत्र की भूमि अनुपयोगी हो जाती है। भू–स्खलन घटनाओं में वृद्धि हो जाती है। खनन क्रिया के लिए किए जाने वाले भूमिगत विस्फोटों से वायुमण्डल में धूलकणों की मात्रा बढ़ जाती है, जिसका सीधा एवम् प्रतिकूल प्रभाव वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य पर पड़ता है। फलस्वरूप ऐसे क्षेत्रों के पारिस्थितिक तंत्र में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है।

(4) औद्योगीकरण के प्रतिकूल प्रभाव (Adverse Impact of Industrialisation) :– औद्योगीकरण के फलस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण में अत्यधिक वृद्धि हुई। औद्योगिक इकाइयाँ वायु और जल प्रदूषण का प्रमुख स्रोत हैं। एक ओर इन इकाइयों से निकलने वाली विषैली गैसों के कारण वायुमण्डल निरन्तर प्रदूषित हो रहा है, तो दूसरी ओर अनेक औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाला रासायनिक अपशिष्ट द्रव नदियों, भूमिगत जल और समुद्री जल को प्रदूषित कर रहा है। नदियों और भूमिगत जल के प्रदूषित होने के कारण औद्योगिक शहरों के समीपवर्ती क्षेत्रों में पेय जल की समस्या विकराल रूप धारण कर चुकी है। पाली शहर के नलकूपों में रसायनयुक्त जल का निकलना इसका ज्वलन्त प्रमाण है। विषैली गैसों के प्रभाव के कारण ओजोन परत का पतला होना और औद्योगिक क्षेत्रों के समीप अम्लीय वर्षा होना सामान्य हो गया है। ये सभी प्रक्रियाएँ पारिस्थितिक तंत्र को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं।

हमारे देश में जल एवम् वायु प्रदूषण के आकलन, निगरानी और नियंत्रण के लिए एक शीर्ष राष्ट्रीय संस्था 'केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड' की स्थापना की गई है, जिस पर जल प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण अधिनियम (1971), वायु प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण अधिनियम (1981) तथ जल उपकर अधिनियम (1977) को लागू करने का दायित्व है। बोर्ड पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986 के प्रावधानों को लागू करने के लिए भी उत्तरदायी है। इस अधिनियम के अन्तर्गत विभिन्न श्रेणी के उद्योगों के निस्सरण और उत्सर्जन के मानक अधिसूचित किए गए हैं। सीमेन्ट, ताप–बिजली संयंत्र, शराब बनाने वाले कारखाने, चीनी, उर्वरक, समन्वित लौह व इस्पात उद्योग, तेल शोधन शालाएँ, लुग्दी और कागज उद्योग, पैट्रो रसायन उद्योग, कीटनाशक, चर्म शोधन शालाएँ, औषध एवम् भेषज निर्माण उद्योग, रंजक और उसके मध्यवर्तियों का निर्माण उद्योग, कास्टिक सोडा तथा जस्ता, तांबा और एल्यूमिनियम प्रगलन उद्योग को अत्यधिक प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों की श्रेणी में रखा गया है। इन उद्योगों की कुल 1551 औद्योगिक इकाइयों में से 1350 इकाइयों ने प्रदूषण नियंत्रण के लिए पर्याप्त सुविधाएँ लगा ली हैं।

खतरनाक रसायनों और खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों के सुरक्षात्मक तरीके से उपयोग करने, उनके प्रबन्धन और रखरखाव करने के लिए खतरनाक अपशिष्ट प्रबन्धन विभाग की स्थापना की गई है, ताकि स्वास्थ्य और पर्यावरण को नुकसान से बचाया जा सके। इस विभाग की गतिविधियाँ तीन क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण हैं– रासायनिक सुरक्षा, खतरनाक अपशिष्टों और नगरपालिका ठोस अपशिष्ट पदार्थों का बेहतर प्रबन्धन। ऐसा अनुमान है कि देश में लगभग 4.4 मिलियन टन खतरनाक पदार्थ उत्सर्जित होते हैं। नगरपालिका ठोस अपशिष्ट (प्रबन्ध और हैंडलिंग) नियम 2000, फ्लाई–एश अधिसूचना 1999 तथा पुनर्चक्रीय प्लास्टिक (उत्पादन एवं उपयोग) नियम 1999/2000 आदि के द्वारा देश में खतरनाक पदार्थों तथा अपशिष्टों के प्रबन्धन को कानूनी स्वरूप प्रदान किया गया है।

(5) जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव (Adverse Impact of Climate Change) :– जलवायु किसी भी पारिस्थितिक तंत्र को नियन्त्रित करती है। औद्योगिक क्रान्ति के बाद से मानव की अनेक क्रियाओं द्वारा जलवायु में परिवर्तन हो रहा है, जिससे पारिस्थितिक तंत्र भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो रहा है। जलवायु के परिवर्तन के लिये मानव की निम्न क्रियाएँ महत्त्वपूर्ण कारण हैं –

1. वनोन्मूलन :– मानव अपनी सुख सुविधा एवम् लाभ के लिये वनों का अतिदोहन कर रहा है, जिससे वर्षा में अनियमितता आई है और तापमान में वृद्धि हुई है।

2. औद्योगीकरण :– औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाली विषैली गैसें न केवल वायु को प्रदूषित करती हैं, बल्कि इनके प्रभाव से ओजोन परत विरल होने लगती है। ओजोन परत सूर्य से आने वाली पराबैंगनी और अवरक्त किरणों को अवशोषित कर भू सतह पर पहुँचने से रोकती है। विषाक्त गैसों के परिणामस्वरूप विश्व में चर्म एवम् श्वास के रोगियों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है।

3. अणुशक्ति का आविष्कार :– मानव का सबसे अधिक विध्वंसात्मक वैज्ञानिक आविष्कार अणुबम की खोज है, जिसके भूमिगत या समुद्र में किए जाने वाले विस्फोटों से जलवायु प्रभावित होती है। पोकरन विस्फोट के बाद बाड़मेर क्षेत्र में अधिक वर्षा का होना इसका ज्वलन्त प्रमाण है।

मानव वैज्ञानिक प्रगति के नाम पर जो कुछ कर रहा है,

उससे जलवायु तंत्र प्रत्यक्ष रूप से और पारिस्थितिक तंत्र अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो रहा है।

6 से 17 दिसम्बर, 2004 तक ब्यूनस आयर्स में जलवायु परिवर्तन सम्बन्धी बैठक में मौसम में हो रहे परिवर्तनों और इनके कारणों का निर्धारण करके उन्हें नियंत्रित किए जाने के प्रयासों पर कोई सहमति नहीं बन पाई। इसके पीछे विकसित देशों संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत संघ, इटली आदि स्रोत है। यही नहीं सउदी अरब, ओमान, कतर जैसे देश भी कार्बन उत्सर्जन को रोकने के विरोध में हैं क्योंकि ऐसा करने से उनकी अर्थव्यवस्था को संकट उत्पन्न हो सकता है।

आज विश्व के प्रत्येक देश में मौसम का व्यवहार असामान्य हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वर्षा का कोई निश्चित मौसम नहीं रहा। बर्फवर्षा के लिये कोई जगह निश्चित नहीं रही, क्योंकि दुबई में बर्फवर्षा हो चुकी है, फूलों के खिलने का कोई निश्चित मौसम नहीं रह गया है, गर्मी का मौसम कब प्रारम्भ होगा और तापमान किस ऊँचाई तक पहुँच जाएगा, यह निश्चित करना भी सम्भव नहीं हो पा रहा है। मौसम के इस असामान्य व्यवहार का प्रमुख कारण वैश्विक तापमाप में वृद्धि है। इन्टरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज ने ग्लोबल वार्मिंग को लेकर गम्भीर चेतावनी दी है, कि अगर इसे नहीं रोका गया तो बड़ी संख्या में तूफान और बाढ़ आयेंगे। गर्मी बढ़ेगी और लू व गर्म थपेड़ों से मरने वालों की संख्या भी बढ़ेगी। इसे कम करने का एक ही उपाय है कि ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन 1990 के स्तर से 50 से 70 प्रतिशत तक कम किया जावे।

जून 2004 में भारत सरकार ने क्लाइमेट चेंज पर पहली नेशनल कम्यूनीकेशन रिपोर्ट जारी की। जिसमें पहली बार ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन और उनके प्रभाव के बारे में अधिकाधिक रूप से बताया गया। इस रिपोर्ट के अनुसार पिछले 100 वर्षों में औसत तापमान में 0.4 डिग्री सेल्सियस की दर से वृद्धि के परिणामस्वरूप देश के पश्चिमी, उत्तरी–पश्चिमी भाग और उत्तरी आन्ध्र प्रदेश में वर्षा में 10–12 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है।

(6) प्राकृतिक आपदाओं के प्रतिकूल प्रभाव (Adverse Influences of Natural Disasters) :– मानवीय क्रियाओं के फलस्वरूप बाढ़, सूखा, अकाल, भूस्खलन आदि प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि हुई हैं। नदियों पर बड़े बांधों के निर्माण से भूकम्पीय क्रियाओं में वृद्धि देखी गई है। महाराष्ट्र में आये लाटूर भूकम्प के लिए कोयना बांध को भी उत्तरदायी माना गया है। 1980 के दशक में विश्व में प्राकृतिक आपदाओं के कारण औसतन दो अरब डालर की सम्पत्ति की हानि हुई, जबकि 1990 के दशक में यह औसत बढ़कर 12 अरब डालर हो गया। 26 दिसम्बर, 2004 को सुनामी लहरों के फलस्वरूप दो लाख से अधिक व्यक्ति काल के ग्रास बन गए। अंडमान–निकोबार तट पर समुद्री तल की ऊँचाई बढ़ गई है। अतः स्पष्ट है प्राकृतिक आपदाओं से पारिस्थितिक तंत्र में असंतुलन पैदा होता है।

पारिस्थितिकीय सन्तुलन

पारिस्थितिक तंत्र पर मानव क्रियाओं के प्रभावों के वर्णन से स्पष्ट है कि मानवीय क्रियाएँ ही पारिस्थितिक तंत्र में असन्तुलन उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मानव वैज्ञानिक विकास को रोक दे और हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाएं। अपितु आवश्यकता इस बात की है कि मानवीय क्रियाओं और पर्यावरण के बीच सन्तुलन स्थापित किया जाए। वनों को नष्ट होने से बचाया जाए, वृक्षारोपण कर वन क्षेत्र में वृद्धि की जाए, प्रदूषण नियंत्रण के समुचित और प्रभावकारी उपाय किए जावें, पर्यावरण में असन्तुलन उत्पन्न करने वाली क्रियाओं पर नियंत्रण किया जावे, जिससे पारिस्थितिक तंत्र में सन्तुलन बना रहे और भावी पीढ़ी के भविष्य को सुरक्षित बनाया जा सके।

(i) प्राकृतिक संतुलन – संसार में विविध प्रकार के जीवधारी पाए जाते हैं। किसी भी पारिस्थितिकीय समुदाय में किसी भी प्राणी जाति की समष्टि का आकार तब तक स्थिर बना रहता है, जब तक कि कोई प्राकृतिक प्रकोप इसकी स्थिरता को भंग न कर देवें। इस स्थिरता को ही पारिस्थितिकी के क्षेत्र में, प्रकृति में संतुलन कहते हैं।

वर्तमान समय में सूखा, बाढ़, वर्षा की अनियमितता, भूकम्प इत्यादि प्रकृति में संतुलन नहीं होने के परिणाम है।

(ii) प्रकृति में संतुलन की व्यवस्था :– प्रकृति में जैविक समुदाय तथा पर्यावरण के मध्य संतुलन करने हेतु निम्न व्यवस्थाएँ होती हैं–

(क) प्रतिस्पर्धा – जीवधारियों के मध्य प्रतिस्पर्धा उनकी आबादी को नियंत्रित करने में सहायक होती है। सामान्यतः पारिस्थितिक तंत्र में भोजन के स्रोत सीमित होते हैं। भोजन की प्राप्ति हेतु जीवधारियों में परस्पर संघर्ष होता है। परभक्षी (Predator), स्वयं के शिकार की समष्टि को नियंत्रित करता है। इसी तरह शिकार भी अपनी उपलब्धता के आधार पर परभक्षी की समष्टि को नियंत्रित करता है।

(ख) पारिस्थितिक तंत्र/पारितंत्र :– पारिस्थितिक तंत्र के अजैविक तथा जैविक घटक परस्पर अंतर्सम्बन्धित रहते हुए तंत्र का संतुलन बनाए रखते हैं। ये जटिल संबंधों का इस प्रकार का जालक (Network) बनाते हैं, जो जनसंख्या की वृद्धि को नियंत्रित करता है। प्रत्येक प्राणी जाति अपनी जीवन शैली द्वारा एक कार्यात्मक छवि बनाती है, जिसे निकेत (Niche) कहते हैं। संक्षेप में निकेत किसी जाति की पारिस्थितिकीय भूमिका होती है तथा पारिस्थितिक तंत्रों के बीच ऊर्जा (Energy) और पदार्थों के स्थानांतरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस प्रकार प्रत्येक जाति अपनी ही कार्यशैली में पारिस्थितिक तंत्र को स्थायित्व/संतुलन प्रदान करती है। जाति पादप की हो अथवा प्राणी की, पारिस्थितिक तंत्र के लिए उसके कार्य महत्त्वपूर्ण होते हैं। प्रत्येक जाति खाद्य–जाल (Food-web) तथा ऊर्जा प्रवाह (Energy flow) के माध्यम से नैसर्गिक संतुलन बनाये रखती है। प्रत्येक उच्च क्रम का उपभोक्ता (Comsumer) अपने से निचले

क्रम के जीवों का भक्षण करके जैव भार (Biomass) तथा संख्या के पिरामिड (Pyramid of numbers) को संतुलित रखकर जैव नियंत्रण के माध्यम से पारिस्थितिकीय व्यवस्था को स्वनियंत्रित प्रणाली का रूप देते हैं।

(ग) व्यवहार – कुछ जीवधारियों की जनसंख्या उनके व्यवहार के माध्यम से प्रभावित होती है।

(iii) प्राकृतिक संतुलन में अवरोध – मानव ने अपने क्रियाकलापों द्वारा प्राकृतिक संतुलन में अत्यधिक अवरोध पैदा किया है। एक समय ऐसा भी था जब आस्ट्रेलिया महाद्वीप में खरगोशों का नामो निशान नहीं था। 19वीं शताब्दी में कुछ पर्यटक (Tourist) यहाँ पर अपने खरगोश लाए। क्योंकि आस्ट्रेलिया में खरगोश का भक्षण करने वाले प्राणी नहीं थे, फलस्वरूप वहाँ पर खरगोश की संख्या निरंतर रूप में तेजी के साथ बढ़ी, जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि खरगोशों ने वहाँ की कृषि–फसलों को समाप्त करना प्रारम्भ कर दिया। इसे व्यवस्थित करने हेतु वहाँ पर लोमड़ियों (Foxes) का प्रवेश करवाया गया, जिन्होंने सफलतापूर्वक वहाँ पर खरगोशों की संख्या को नियंत्रित किया। तत्पश्चात् ये लोमड़ियाँ भी वहाँ पर आबाद पक्षियों के साथ–साथ अन्य प्राणियों का शिकार करने लगी। इससे इस तथ्य को बल मिलता है कि प्रकृति में संतुलन की प्रक्रिया 'स्वतः नियंत्रित' होती है।

(iv) कुंजी–शिला (की स्टोन) जातियों की प्रकृति संतुलन में भूमिका– ''कुंजी–शिला जातियाँ, ऐसी जातियाँ हैं जो किसी क्षेत्र विशेष के पारितंत्र (Ecosystem) को सर्वाधिक प्रभावित करती हैं।''

की–स्टोन जातियाँ पारितंत्र को स्थायित्व (Stability) प्रदान करती हैं तथा इनके अभाव में ऐसे बदलाव होते हैं, जिनसे पारितंत्र का स्वरूप एकदम परिवर्तित हो जाता है तथा इसके समाप्त होने की संभावना भी बनी रहती है। इस प्रकार पारितंत्र में की–स्टोन जातियों की भूमिका अत्यधिक कारगर होती है।

प्रमुख परभक्षी (Predator) जातियाँ की–स्टोन जातियाँ हैं तथा ये पारिस्थितिक समुदाय (Ecological community) पर अपना प्रभाव दृष्टिगोचर करती है। परभक्षी की संख्या में बढ़ोतरी इस बात का सूचक होती है कि ये शिकार (Prey) जातियों को अपने भोजन के रूप में उपयोग करते हुए उनकी संख्या को सीमित बनाए रखें। परभक्षी जातियों के अभाव में शिकार जातियों की संख्या में अभिवृद्धि होगी तथा इस स्थिति में सारे पारिस्थितिक तंत्र के नष्ट होने की संभावना बनी रहती है। इस प्रकार की–स्टोन जातियाँ ही समुदाय में अन्य जातियों की संख्या को निर्धारित करती हैं।

हाथी एक की–स्टोन जाति है। यह घास के मैदानों में जीवन यापन करता है। हाथी शाकाहारी प्राणी है, लेकिन घास का उपयोग अपने भोजन हेतु नहीं करता है। इसका प्रमुख भोजन झाड़ियाँ एवं वृक्ष होते हैं, फलस्वरूप वृक्ष तथा झाड़ियों में अभिवृद्धि नहीं हो पाती है, परिणामस्वरूप घास के मैदानों का अस्तित्व बना रहता है अर्थात् यह घास के मैदान को वन में परिवर्तित होने से रोकता है।

इसी प्रकार मेंढ़क भी एक की–स्टोन जाति है, जो मच्छरों एवं कीट पतंगों को खाकर उनकी संख्या को सीमित रखती है। मेंढ़क की अनुपस्थिति में निःसंदेह इनकी संख्या में बढ़ोतरी होगी तथा जीवधारियों का जीवन कष्टपूर्ण हो जायेगा।

इस प्रकार की–स्टोन जातियाँ प्रकृति में संतुलन को बनाए रखती हैं तथा इसी में मनुष्य का हित भी है।

(v) प्रकृति संतुलन में वन्य जीवों का योगदान – वन्य जीव प्रकृति संतुलन में अपना अलग से विशिष्ट स्थान एवं महत्त्व रखते हैं। वन्य जीव प्रकृति में पारिस्थितिकीय संतुलन बनाये रखते हैं तथा एक बार भी संतुलन में व्यवधान आ जाये तो उसका प्रत्यक्ष प्रभाव मानव जाति पर दिखाई पड़ता है। उदाहरणार्थ – यदि शिकारियों के द्वारा मांसाहारी (Carnivorous) वन्य जीवों को समाप्त कर दिया जाये तो शाकाहारी (Herbivorous) वन्य जीवों की संख्या में इतनी अकल्पनीय बेहताशा वृद्धि हो जायेगी कि वे जंगल के सभी पेड़–पौधों को चट कर जायेंगे तथा अंततः जंगलों का नामोनिशान भी शेष नहीं रहेगा। फलस्वरूप वर्षा अल्प होगी तथा वर्षा के अभाव में फसलें अच्छी नहीं होगी, फलस्वरूप मनुष्य को आर्थिक नुकसान का सामना करना पड़ेगा। इस प्रकार यह तथ्य उजागर होता है कि वन्य जीव प्रकृति संतुलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

निष्कर्ष – उपर्युक्त विवरण इस बात को इंगित करता है कि प्रमुख रूप से की–स्टोन जातियाँ तथा वन्य–जीव प्रकृति संतुलन में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान निर्धारित करते हैं। इनके संरक्षण से पर्यावरण में संतुलन स्थापित होता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. पारिस्थितिकी शब्द की रचना ग्रीक भाषा के Oikos अर्थात् आवास और Logos अर्थात् अध्ययन को मिलाकर की गई।
2. पारिस्थितिक तंत्र जीव और पर्यावरण की अन्तःप्रक्रिया का प्रतिफल है। पारिस्थितिक तंत्र के प्रवर्तक ए.जी. टांसले हैं।
3. पारिस्थितिक तंत्र वह तंत्र है, जिसमें पर्यावरण के समस्त जैविक और अजैविक कारक अन्तःसम्बन्धित होते हैं।
4. पारिस्थितिक तंत्र प्राकृतिक तथा मानव निर्मित हो सकता है। पारिस्थितिक तंत्र की संरचना पर्यावरण के जैविक और अजैविक घटकों की पारस्परिक अन्तःक्रियाओं द्वारा होती है।
5. एक पारिस्थितिक तंत्र के जैविक और अजैविक घटकों को क्रियाशील रहने के लिये ऊर्जा की आवश्यकता होती है, और यही ऊर्जा उस पारिस्थितिक तंत्र को गतिशील बनाये रखती है। इस प्रक्रिया को ऊर्जा प्रवाह कहते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. जैवविविधता शब्द सर्वप्रथम किसने प्रतिपादित किया –
   (अ) ई.ओ. विल्सन
   (ब) डेसिड टिलमेन
   (स) नोरमन मेयर्स
   (द) कोई नहीं
2. विश्व में जैवविविधता के कितने तप्त स्थलों का पता लगाया गया है –
   (अ) 12 (ब) 20
   (स) 25 (द) 34
3. भारत में राष्ट्रीय उद्यानों की संख्या है–
   (अ) 103 (ब) 72
   (स) 89 (द) 96
4. पारिस्थितिक तंत्र शब्द के प्रवर्तक हैं –
   (अ) ए.जी. टांसले (ब) फासवर्ग
   (स) ई.पी. ओडम (द) पीटर हेगेट
5. पारिस्थितिकी के सम्बन्ध में कौन सा कथन सत्य है –
   (अ) पारिस्थितिकी जीवों पर पर्यावरण के प्रभावों का अध्ययन है।
   (ब) पारिस्थितिकी वायु, जल और मृदा के प्रदूषण का अध्ययन है।
   (स) पारिस्थितिकी मानव पर्यावरण का अध्ययन है।
   (द) पारिस्थितिकी जीवों एवम् पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन है।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

6. सम्पूर्ण पृथ्वी का कितना प्रतिशत भाग स्थल मण्डल है?
7. जैव मण्डल किन क्रियाओं का प्रतिफल है?
8. हमारे देश में सम्पूर्ण विश्व की कितनी प्रतिशत पादप विविधता पाई जाती है?
9. पौधों में पाये जाने वाले हरे रंग के द्रव्य का नाम बताइए।
10. ओडम के अनुसार सूर्यातप से औसतन प्रतिदिन प्रति वर्गमीटर कितनी ऊर्जा प्राप्त होती है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

11. जैव मण्डल की परिभाषा दीजिए।
12. भारत में जैवविविधता पर टिप्पणी लिखिए।
13. राष्ट्रीय उद्यानों और अभ्यारण्यों की स्थापना के उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।
14. टांसले के अनुसार पारिस्थितिक तंत्र की परिभाषा लिखिए।
15. ऊर्जा प्रवाह को परिभाषित कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न –

16. पारिस्थितिक तंत्र की अवधारणा पर लेख लिखिए।
17. पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह पर लेख लिखिए।
18. पारिस्थितिक तंत्र पर औद्योगीकरण के प्रभावों को विस्तार से समझाइये।

उत्तरमाला– 1. अ 2. द 3. अ 4. अ 5. द